समकालीन हिंदी दलित–कहानी में व्यक्त प्रतिरोध

डॉ० सरिता चौहान
एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग
एमसीएम डीएवी महिला–कॉलेज
सेक्टर–36 ए, चण्डीगढ़

saritachauhan1204@gmail.com

सार : आज का युग अस्मिता विमर्श का है। आज हाशिए पर धकेली गई अस्मिताओं में समाज की मुख्यधारा से जुड़ने की न केवल अकुलाहट है वरन् अपने साथ हुए अत्याचार, शोषण एवं प्रताड़ना के प्रति आक्रोश भी है। आधुनिक युग में विभिन्न विमर्श नए भावबोध को लेकर उभरे हैं। आज के रचनाकारों ने साहित्य और समाज को अपने नजरिये से देखा और जांचा–परखा है। उन्होंने उन सभी परम्परागत मूल्यों एवं मान्यताओं का विरोध किया है जो किसी भी व्यक्ति, जाति और वर्ग के शोषण का कारण बनते हैं। दलित–विमर्श एक ऐसा ही विमर्श है जो परम्परागत मूल्यों को न केवल नकारता है वरन् पूरी शक्ति के साथ उनका प्रतिरोध भी करता है। दूसरे शब्दों में दलित–साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है। दलित–साहित्य के केन्द्र में वे सारे सवाल हैं जिनका सम्बन्ध भेदभाव से है।

बीज शब्द : अस्मिता, दलित, नकार, प्रतिरोध, सामाजिक वर्चस्व, उत्पीड़न

दलित–साहित्य वस्तुतः जाति व वर्ण व्यवस्था के अभि ाप से उपजा है। वह विभिन्न विधाओं के माध्यम से दलितों के उत्पीडन, दमन एवं संत्रास को वाणी देता है। सदियों के भाोशण, संत्रास एवं अपमान से उपजा दलित–साहित्य आक्रामक तेवर से सम्पृक्त है। प्रसिद्ध आलोचक तेज सिंह का मानना है कि

CGCTA

भारत में बहुजन समाज के प्रतिरोध की अविभाज्य सांस्कृतिक परंपरा रही है। निस्संदेह इसके समानांतर प्रभुत्व ाली वर्ग की सांस्कृतिक परंपरा भी उपस्थित थी। इन दोनों के बीच सांस्कृतिक–वैचारिक टकराहट नि ित थी और यह टकराहट सामाजिक अस्मिता तथा सामाजिक वर्चस्व के लिए थी। बुद्ध, कबीर, फुले और डॉ० अम्बेडकर के चिन्तन एवं प्रेरणा से बहुजन समाज में अपने भाोशण के खिलाफ प्रतिरोध की चेतना विकसित हुई। धीरे–धीरे प्रतिरोध का यह स्वर तीव्र से तीव्रतर होता गया और आज दलित–विम ा के रूप में हमारे सामने उपस्थित हुआ। सदियों से प्रताड़ना, अस्पृ यता और उत्पीड़न का ि ाकार रहा दलित वर्ग एक ओर समाज में जन आंदोलन का आह्वान करता है तो दूसरी ओर साहित्य में अपनी पीड़ा, आक्रो ा, भाोशण और प्रतिरोध आदि को निसंकोच भाव से अभिव्यक्त करता है। दलित साहित्य में दया और सहानुभूति का प्रतिरोध में तथा वेदना का आक्रो ा में रूपान्तरण है।

वास्तव में ''आधुनिक दलित–विमर्श स्वर्ण–वर्चस्व एवं ब्राह्मणवादी मनोवृत्ति को बेनकाब करता हुआ उस भारतीय सामाजिक सरंचना व सामंतवादी व्यवस्था पर चोट करता है जो ब्राह्मणवादी मनोवृत्ति और स्वर्ण–वर्चस्व के पोषक एवं संरक्षक हैं। इसलिए दलित–विमर्श सम्पूर्ण सामाजिक संरचना के पुनर्गठन की मांग करता है। दलित–चेतना जन्मना जाति एवं वर्ण की श्रेष्ठता को पूर्णतः खारिज करती है और कर्म के आधार पर मनुष्य के मूल्यांकन की माँग करती है। आधुनिक दलित–विमर्श के पाँच महत्त्वपूर्ण चरण माने जा सकते हैं – (1) वर्णगत– जातिगत विषमता का बोध – (2) विषमता के कारणों की पड़ताल – (3) विषमता को मिटाने की चाह –

CGCTA

(4) विषमता को मिटाने के लिए 'मनसा–वाचा–कर्मणा' सक्रिय प्रयास और – (5) विषमता को मिटाकर समाज का एक नये समरस रूप में गठन। जिस साहित्य में दलित विमर्श के उपर्युक्त पाँच चरणों में से किसी एक का या सामाजिक सरंचना की परिधि से बहिष्कृत, सत्ता–सुख से वंचित, न्यूनतम सुविधओं के अभाव में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि किसी भी प्रकार के उत्थान की चिन्ता अभिव्यक्त हुई हो, उसे निश्चय ही दलित–साहित्य कहा जाएगा, चाहे उस साहित्य का रचनाकार दलित हो या गैर–दलित।''[1]

समकालीन हिन्दी दलित कहानी में व्यक्त प्रतिरोध पर विचार करने से पूर्व 'समकालीन', 'दलित' एवं 'प्रतिरोध' शब्दों पर विचार कर लेना अति आवश्यक है। समकालीन शब्द अंग्रेजी शब्द 'कन्टेम्परेरी' के समानार्थी शब्द के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। '''समकालीन' शब्द का शब्द–कोश के अनुसार अर्थ है – जो (दो या अधिक में से) एक ही समय में हुआ हो।''[2] दलित शब्द का अर्थ ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है – ''दलित शब्द का अर्थ है– जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।''[3] दलित साहित्यकारों के अनुसार दलित का अर्थ शूद्र है जो वर्णव्यवस्था में सबसे नीचे पायदान पर स्थित है। दलित साहित्य का जन्म मूलतः मराठी साहित्य में हुआ। इसके पश्चात् यह हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़ आदि में आया। 1960 के पश्चात् हिन्दी में दलित जीवन के सर्वांगीण पक्षों पर दलित साहित्य सृजित हुआ है। सन् 2000 के बाद से तो दलित साहित्य के भण्डार में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

CGCTA

ओम प्रकाश वाल्मीकि का कहना है, ''दलित साहित्य संज्ञा मूलतः प्रश्न सूचक है। महार, चमार, मॉग, कसाई, भंगी जैसी जातियों की स्थितियों के प्रश्नों पर विचार तथा रचनाओं द्वारा उसे प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।''[4] प्रतिरोध का अर्थ है अन्याय एवं भोशण का पुरजोर एवं सक्रिय विरोध। हिन्दी शब्द सागर के अनुसार, ''प्रतिरोध का अर्थ है– संज्ञा पु० (सं.) 1. विरोध 2. रुकावट, रोक, बाधा 3. तिरस्कार 4. प्रतिबिम्ब।''[5]

निस्संदेह दलित वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो शोषण की तमाम परतों एवं सरंचनाओं को झेलते हुए अमानवीय छूआछूत का शिकार भी रहा है। ''भारत में दलित चिन्तन व आंदोलन ने अपनी विचारधारा ब्राह्मणवाद के विरोध में निर्मित की है। ब्राह्मणवाद के तमाम मूल्य, नैतिकता व विचारधारा मुख्यतः दो स्तम्भों पर टिकी है – पितृसत्ता और वर्ण व्यवस्था। ब्राह्मणवाद की विचारधारा का आधार या जीवन स्रोत वेद–वेदांग, पौराणिक साहित्य और स्मृति ग्रंथ है। इनमें निहित वर्चस्वी वर्ग के मूल्यों को चुनौती देकर ही दलित दृष्टि का विकास हुआ है। ..... लोकायत, बौद्ध धर्म, भक्ति आंदोलन व आधुनिक काल में समाज सुधार के दौरान ज्योतिबा फुले, अम्बेडकर, नारायण गुरु, नायकर के आंदोलन को वर्तमान दलित–आन्दोलनों की पृष्ठभूमि, परम्परा व स्रोत के तौर पर रखा जा सकता है।''[6]

समकालीन दलित हिन्दी–कहानी की पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि प्रतिरोध दलित–कहानी का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। दलित–विमर्श किसी भी प्रकार के वर्चस्व को नकारता है। हिन्दु पौराणिकता, ईश्वर, पुनर्जन्म, धर्म, स्वर्ग–नर्क, कर्मकांड आदि को दलित–विमर्श न केवल नकारता है अपितु पूरी मजबूती के साथ उसका विरोध भी करता है। यह विमर्श हिन्दुवाद के

CGCTA

कर्मफल व नियतिवाद पर भी सवाल उठाता है। चूंकि उत्पीड़न एवं शोषण को दलित कहानी लेखन का उत्प्रेरक तत्त्व स्वीकार किया जा सकता है इसलिए आक्रोश एवं विद्रोह दलित कहानियों में सर्वत्र दिखाई देता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'शवयात्राा', 'मुम्बई कांड', 'भय', सूरजपाल चौहान की 'बदबू' रामनिहोर विमल की 'अब नई नाचब', रमणिका गुप्ता की 'दाग दिया सच' बुद्धशरण हंस की 'अस्मिता लहु–लुहान', रत्नकुमार सांभरिया की 'बकरी के दो बच्चे', मुद्राराक्षस की 'पैशाचिक' रत्नवर्मा की 'बलात्कारी', 'मोहन दास नैमिशराय की 'आवाजें', 'अपना गांव', 'हारे हुए लोग', 'रीत', 'अधिकार चेतना', 'एक अखबार की मौत', 'महाशूद्र', 'उसके जख्म' आदि कहानियाँ दलित जीवन की यातना व पीड़ा का दस्तावेज हैं। इन कहानियों में गहरी संवेदना, दलित के प्रति वेदना एवं शोशण के प्रति विद्रोह का भाव है। स्वर्ण वर्चस्व एवं अन्य परम्पराओं को नकारती ये कहानियाँ निस्संदेह गैर–रूमानी हैं।

21वीं शती की दलित–कहानी में शोषण, दमन एवं उत्पीड़न के विरूद्ध तीव्र विद्रोह, प्रतिशोध एवं आक्रामक प्रतिरोधात्मक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। दलितों का संघर्ष एवं पीड़ा उन्हीं की भाषा में –सौन्दर्यबोध अथवा व्याकरण की चिन्ता किए बिना–व्यक्त की गई है। दलित–कहानी संकेत करती है कि सामाजिक वर्चस्व की जड़े उत्पीड़क और उत्पीड़ित की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति में हैं। निस्संदेह घृणा, आक्रोश एवं प्रतिशोध दलित कहानी के केन्द्रीय भाव हैं किन्तु इसके साथ ही हीनभावना से उबरना, आत्मसम्मान, परिवर्तन का संकल्प आदि भी आज की दलित कहानी में देखने को मिल रहे हैं। आज की दलित कहानी दुख, व्यथा,

CGCTA

अवसाद के साथ–साथ संघर्ष, स्वाभिमान और स्वत्व–बोध को भी रूपायित कर रही है। अकुण्ठ, बैलोस और अपेक्षाकृत व्यावहारिक चरित्र दलित कहानी में प्रवेश पा रहे हैं। कैलाशचन्द्र चौहान की कहानी 'हाइवे पर संजीव का ढाबा' के दोनों दलित पात्र नई चरित्र–सृष्टि के उदाहरण हैं। मोहनदास नैमिशराय की 'गंजा पेड़ और बारिस' स्वर्ण अत्याचार से मुक्त कहानियाँ हैं। नये दलित कहानीकारों का परिप्रेक्ष्य वैश्विक भी है। कैलाश वानखेड़े की कहानी 'कितने बुश कितने मनु', अनीता भारती की 'बीज बैंक', टेकचन्द की 'दौड', आदि कहानियाँ भूमंडलीकरण से टकराती हुई कहानियाँ हैं। कौशल पवार की कहानी 'दिहाड़ी' श्रम से सम्बन्धित सवालों को उठाती है। 'दौड', कहानी में श्रमिक जो अधिकतर दलित हैं, की ज़िन्दगी की ओर ध्यान खींचा गया है।

उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त दलित कहानी लेखन की कुछ कमजोरियाँ भी रही हैं जिन पर ईमानदारी से विचार करने की आवश्यकता है। समकालीन दलित कहानी 'स्टीरिओटाइप्स' अधिक है। चूँकि ये दलित साँचे की कहानियाँ हैं इसलिए इनके स्वर्ण पात्र दम्भी, स्वार्थी, साम्प्रदायिक जातिवादी और पाखंडी के रूप में चित्रित किए गए हैं। दलित कहानियों में अतीत के कुछ निष्कर्ष वर्तमान पर हावी हैं और ये निष्कर्ष परिस्थिति के वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन में बाधक हैं। ''ब्राह्मण के सिर पर हर समय सींग दिखाना दलितवादी 'सैडिज़्म' है, रचनात्मक अन्वेषण और आनन्द नहीं।''[7] वास्तव में उत्पीड़न को कहानी रचना का उत्प्रेरक एवं प्रमुख तत्त्व मानने से दलित कहानियाँ एकरस सी हो गई हैं। दलित कहानी लेखन की एक प्रमुख समस्या इसका अति आत्मकथात्मक और समुदाय केन्द्रित होना है।

CGCTA

आज की दलित कहानी में अपनी जाति पर 'गर्व' करने या जातिगत आधार पर इकट्ठा होने पर ज़ोर है न कि जाति की संरचना को तोड़ने पर। इन सबके अतिरिक्त यह कहानी साम्पद्रायिकता की दुर्भावना से भी दूर नहीं है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' में दलित उत्पीड़न के साथ–साथ साम्प्रदायिकता की दुर्भावना भी सामने आती है जहाँ एक लड़के का पिता ''चूहड़ों के घर में पैदा होके बामनों सी बोली बोले है''[8] कहकर डाँटता है। इन कहानियों में स्त्री–मुक्ति का प्रश्न असम्बोधित ही है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि दलित साहित्य में उच्च वर्गों के प्रति इतना आक्रोश, नफरत और परिवर्तन की इतनी अधिक बेचैनी है कि इसमें 'अभिव्यक्ति का स्वर' बहुत सधा हुआ नहीं होता। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना है कि ''उन्माद की स्थिति में श्रेष्ठ सृजन असम्भव है। बिना संकीर्णता के उन्माद सम्भव नहीं और संकीर्णता स्वानुभूतिपरक होती है परानुभूतिपरक नहीं जो साम्प्रदायिक साहित्य तो दे सकती है, मानवीय, उदार साहित्य कभी नहीं।''[9] निस्संदेह ''इस बौद्धिक विरूपण और निषेध के महाभियान में व्यक्त आक्रामक भावुकता प्रतिक्रियात्मक एवं निषेधात्मक है न कि सकारात्मक एवं संवादात्मक।''[10]

वास्तव में आज आवश्यकता इस बात की है कि दलित संवेदना एवं उसे व्यक्त करने वाली कहानियाँ वर्ण–कुण्ठा से मुक्त हों, उन्माद से बचें और साम्प्रदायिकता की दुर्भावना से दूर रहें। मुर्दहिया आत्मकथा के प्रसिद्ध दलित लेखक प्रो. तुलसी राम का कहना है कि, ''क्रोध से कभी समाज नहीं बदलता। जैसा कि बुद्ध ने ही कहा है कि क्रोध खौलते हुए पानी की तरह

CGCTA

है जिसमें आपका चेहरा नहीं दिखाई देता है। वहीं पानी शांत रहता है तो आपका चेहरा साफ दिखाई देता है।''[11] वास्तव में सच्चाई यह है कि दलित सृजन श्रेष्ठ साहित्य के रूप में पहचाना जाए इसके लिए इसे अपने रूपगत आयामों के प्रति भी सावधान होना होगा।

निष्कर्ष : ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहा था – ''दलित साहित्य की व्यापकता इसी में है कि वह अन्याय, अत्याचार, सामाजिक विषमताओं, शोषण, दमन के विरूद्ध एक दीवार की तरह खड़ा हो जाए, बेहतर समाज की परिकल्पना को साकार करने के लिए। तभी उसका सामाजिक दायित्व और वैचारिक प्रतिबद्धता सिद्ध होगी।''[12] वास्तव में दलित साहित्य एक पुरोगामी साहित्य है जो दलित अस्मिता को स्थापित करने के लिए संघर्शरत है। वह समाज में सम्यक परिवर्तन की बात करता है और दलितों के हाि ाए से केंद्र की ओर बढने की वकालत करता है। दलित साहित्य समाज, संस्कृति, इतिहास और सभी परम्परागत मानदंडों की पुनर्व्याख्या कर लोकतान्त्रिक मुल्यों को सामाजिक तानेबाने में समाहित करने पर ज़ोर देता है।

CGCTA

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूचीः–

1. हिन्दी दलित कविता, डॉ० बीनल जी. घेटिया, पंचशील शोध समीक्षा (त्रैमासिक शोध पत्रिका) अंक जनवरी–मार्च–2011, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–61
2. सद्गति : दलित विमर्श के विस्फोट की कहानी, डॉ० संजय कुमार, पंचशील शोध समीक्षा (त्रैमासिक शोध पत्रिका) अंक अक्तूबर–दिसम्बर–2011, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–86

3. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–131
4. उपर्युक्त, पृष्ठ–15
5. हिन्दी शब्दसागर (खंड–4), भयामसुंदर दास (संपा.), प्रयागः का ी नागरी प्रचारिणी सभा, 1929, पृष्ठ–2225
6. दलित मुक्ति आंदोलन सीमाएं और संभावनाएं, डॉ० सुभाष चन्द्र, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2010, पृष्ठ–9
7. अम्बेडकर चिन्तन और हिन्दी दलित साहित्य, पी. एन. सिंह, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2010, पृष्ठ–205
8. वर्तमान दलित साहित्य : सहानुभूति तथा स्वानुभूति का संभ्रम, डॉ० सम्राट सुधा, पंचशील शोध समीक्षा (त्रैमासिक शोध पत्रिका) अंक अक्तूबर– दिसम्बर–2011, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–82
9. अम्बेडकर चिन्तन और हिन्दी दलित साहित्य, पी. एन. सिंह, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2009, पृष्ठ–228
10. उपर्युक्त, पृष्ठ–214
11. प्रो० तुलसीराम, कथादेश, अंक अप्रैल–मई–2014, सहयात्रा प्रकाशन प्रा०लि०, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–95, पृष्ठ–19
12. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–20

CGCTA